# सुबह -सुबह फोन करके माथुर साहब ने पूछा ये खबर किसने लिखी ?

एक जनवरी 1983, 'नवभारत टाइम्स' के मुम्बई संस्करण के समाचार संपादक रामसेवक श्रीवास्तव के घर के फोन की घंटी सुबह-सुबह घनघनाती है। उधर से पूछा गया कि पहले पेज पर यह एक खबर किसने लिखी है, नाम बताइए! फोन राजेंद्र माथुर का था, जिन्होंने दो-ढाई महीने पहले ही दिल्ली में 'नवभारत टाइम्स' के प्रधान संपादक का पद सम्भाला था और मुम्बई की अपनी संपादकीय टीम से पहली मुलाकात के लिए पिछली शाम ही मुम्बई पहुंचे थे। श्रीवास्तव जी को लगा कि शायद कुछ भारी गड़बड़ हो गयी है। लेकिन उन्हें समझ में नहीं आया कि इसमें भला क्या गड़बड़ हो सकती है ? खबर तो इस बारे में थी कि मुम्बई के लोगों ने पिछली रात नए साल का स्वागत कैसे किया। दफ्तर में कॉपी निकलवा कर देखी गयी और फिर माथुर जी को फोन कर बताया गया कि खबर तो अखबार के सबसे जूनियर रिपोर्टर ने लिखी है। कुल साल भर हुए हैं उसे काम करते हुए। वैसे लड़का काम तो ठीक ही करता है। क्या कोई बड़ी गलती हो गयी है ? माथुर जी ने कहा, 'नहीं, कोई गलती नहीं हुई है। खबर अच्छी लिखी गयी है। उस लड़के से आज मुझे मिलवाइए।'

वह लड़का मैं था। और 'नवभारत टाइम्स' में मैं अकेला ऐसा लड़का नहीं था। माथुर जी ने इसी तरह खोज-खोज कर अनगिनत लोगों को चीन्हा, बरसों के अनुभवी दिग्गजों से लेकर नए 'बच्चा पत्रकारों' और दूरदराज इलाकों से लिख रहे 'फ्रीलांसलरों' तक को उन्होंने ढूंढा, उन्हें नए-नए प्रयोगों में लगाया, ऐसे नए-नए काम सौंपे, जो उन दिनों के हिंदी अखबारों की कामकाजी शब्दावली में थे ही नहीं।

हालांकि 'रविवार' और 'दिनमान' जैसी कुछ पत्रिकाएं तब तक हिंदी पत्रकारिता में अपने-अपने क्षेत्र में बहुत प्रतिष्ठा पा चुकी थीं और उस समय के युवा हिंदी पत्रकारों की पीढ़ी के बहुत बड़े हिस्से को गढ़ने में इन दोनों पत्रिकाओं का बहुत ही अहम योगदान है लेकिन इन्दौर के 'नई दुनिया' (पहले राजेंद्र माथुर जिसके संपादक थे) जैसे कुछेक अपवादों को छोड़ कर तब के हिंदी के दैनिक अखबारों के लिए पत्रकारिता का मतलब एजेन्सी और स्ट्रिंगरों से मिली खबरें छाप देना भर ही था। उस समय के बड़े मीडिया समूहों के हिंदी अखबार बस चुटकी भर ही बेहतर थे कि कभी-कभार वह अपने समूह के अंग्रेजी दैनिक के विशेषज्ञ पत्रकारों की रिपोर्टें अनुवाद कर छाप दिया करते थे। लेकिन संपादकीय पेज पर मौलिक चिन्तन और विचारोत्तेजक लेखन तो लगभग नहीं के ही बराबर था। आज भी इन सभी मामलों में ज्यादातर हिंदी अखबारों की कमोबेश ऐसी ही दयनीय हालत है। यह अलग बात है कि हिंदी के कुछ अखबार समूह आज शेयर बाज़ार में सूचीबद्ध हैं और हर साल सैकड़ों करोड़ का मुनाफा दर्ज कर रहे हैं, लेकिन हिंदी पत्रकारों की नई खेप तैयार करने संपादकीय स्तर सुधारने, अपनी टीम को प्रशिक्षित करने, विशेषज्ञ पत्रकारों और लेखकों को विकसित करने और फील्ड रिपोर्टिंग के लिए वे एक कौड़ी भी खर्च नहीं करना चाहते।

माथुर जी दिल्ली इसी सपने को लेकर आये थे कि मध्य प्रदेश में 'नईदुनिया' में वह जो कुछ कर रहे थे,

उसे राष्ट्रीय स्तर पर करके दिखायें ताकि हिंदी पत्रकारिता अपने अनुवादी और 'वहां का चेप, यहां छाप' टाइप 'कर्मयोग' से मुक्ति पाने के लिए कुछ तो सोचना शुरू करे। कुछ तो हिंदी में अपनी अलग रिपोर्टिंग हो, साहित्य के अलावा दूसरे और भी विषयों पर भी हिंदी में मौलिक चिन्तन-लेखन हो और ऐसे हिंदी पत्रकार तैयार हों, जिन्हें हिंदी के बाहर भी उनके काम के लिए जाना जाये। उन दिनों की हिंदी की अखबारी पत्रकारिता के हिसाब से यह बहुत महत्त्वाकांक्षी स्वप्न था, लेकिन असम्भव नहीं था, यह माथुर जी ने साबित कर दिखाया।

'नवभारत टाइम्स' में नए-नए प्रयोग होने लगे। टीम में से ढूंढ-ढूंढ कर ऐसे रिपोर्टरों को तराशा गया, जो विदेश, रक्षा, आर्थिक विषयों, राजनीति, पर्यावरण, सामाजिक मुद्दों, खेल आदि पर अंग्रेजी का मुंह देखे बगैर बेलाग रिपोर्टिंग कर सकें। राज्यों में लस्टम-पस्टम चल रहे ब्यूरो को चाक-चौबन्द किया गया, जहां ब्यूरो नहीं थे, वहां खोले गये। और तो और, 'घुमन्तू संवाददाता' के एक अनूठे प्रयोग को भी शुरू किया गया, जो देश भर में कभी भी कहीं भी घूम कर ज्वलन्त विषयों पर तुरन्त और विस्तार से रिपोर्टिंग करे। भाषा से लेकर खबरों के शीर्षकों और तस्वीरों तक पर ध्यान दिया जाने लगा। और जब 'नवभारत टाइम्स' के लखनऊ, पटना और जयपुर के नए संस्करणों के खुलने की शुरुआत हुई तो माथुर जी ने इन सभी जगहों पर ऐसे युवा पत्रकारों की टीम खड़ी की, जो उनकी ही तरह कुछ सपनों को लेकर शिद्दत से जिये। आज की पीढ़ी को यह जान कर शायद बड़ा अटपटा लगे कि तब दूसरे अखबारों में वरिष्ठ पदों पर काम कर रहे कई युवा पत्रकार यहां केवल उपसंपादक पद पर आने को तैयार हो गये सिर्फ इसलिए कि माथुर जी की 'ड्रीम टीम' का हिस्सा बन सकें।

माथुर जी के नए प्रयोगों में बहुत कुछ सफल रहे, तो कुछ नहीं भी रहे। कुछ पर सवाल भी उठे। लेकिन उनका मानना साफ था कि प्रयोगों की रफ्तार कभी रुकनी नहीं चाहिए और उसके लिए हमेशा हौसला बढ़ाया जाना चाहिए। 1983 के क्रिकेट विश्व कप की जीत पर मुम्बई के 'नवभारत टाइम्स' के एक प्रयोगधर्मी शीर्षक को अगले दिन के डाक संस्करण में जब बदल कर 'पुराने ढर्रे' का कर दिया गया, तो माथुर जी ने साफ कहा कि प्रयोग करते हुए हमारे पत्रकार कुछ 'ब्लंडर' भी कर दें, तो वह मुझे खुशी-खुशी मंजूर है, लेकिन प्रयोगों का ऐसा गला घोंटा जाना कतई मंजूर नहीं।

और 'नवभारत टाइम्स' के अलग-अलग संस्करणों में हो रहे ऐसे तमाम प्रयोगों पर माथुर जी बड़ी पैनी नजर रखते थे। उन्हें लगातार दफ्तर में 'डिस्प्ले बोर्ड' पर दिखाया जाता था ताकि लोग उससे सीख और प्रेरणा ले सकें। दिल्ली के मुकाबले 'नवभारत टाइम्स' के क्षेत्रीय संस्करणों में टीम, संसाधन आदि सभी कुछ बहुत सीमित हुआ करता था। लेकिन अकसर उत्साह से लबरेज इन क्षेत्रीय संस्करणों की टीमें बहुत कुछ ऐसा करती थीं, जिसकी अकसर वाहवाही होती थी। इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद उपजी जबर्दस्त सहानुभूति लहर के चलते जब 1984 के लोकसभा चुनाव में राजीव गांधी की कांग्रेस ने तमाम विपक्ष का सफाया कर दिया, तो उस दिन 'नवभारत टाइम्स', लखनऊ में रामकृपाल का दिया बैनर शीर्षक 'पूरे देश पर पंजे की छाप' आज भी कम से कम लखनऊ में तो लोगों को भूला नहीं है। माथुर जी का कमेंट था, 'ऐसा होना चाहिए शीर्षक और ऐसा होना चाहिए अखबार!'

कवरेज, कंटेंट, प्रस्तुतीकरण और भाषा को लेकर राजेंद्र माथुर कब कहां क्या कर रहे हैं, क्या कह रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, उनकी टीम के सारे युवा पत्रकारों की इस पर न केवल हमेशा चौकस नजर रहती थी

बल्कि उनमें यह ललक और अद्भुत होड़ हर दिन बनी रहती थी कि आज के अंक में क्या कुछ नया कर दिया जाये। मेरी नजर में यही राजेंद्र माथुर की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। कोई भी युवा पत्रकार बेखटके उनके कमरे में जा सकता था, दफ्तर में कहीं भी आते-जाते बेहिचक उन्हें रोक कर कुछ भी पूछ सकता था, अपनी शंका समाधान कर सकता था, किसी बात पर खुल कर अपनी आपत्ति जता सकता था बिना रत्ती भर भी डरे कि संपादक को उसकी बात बुरी तो नहीं लग जायेगी! टाइम्स समूह के प्रकाशनों के प्रधान संपादक तो दूर, ज्यादातर सहायक सम्पादक तक अपने को 'इलीट' जमात में रखते थे। ऐसे में अकसर माथुर जी का न्यूज रूम में आकर उपसम्पादकों या रिपोर्टरों के बीच बिलकुल सहज हो कर बैठ जाना और गप्पें लगाना हम सबके लिए अविस्मरणीय अनुभव है।

माथुर जी पूरी ईमानदारी के साथ पूरे-पूरे लोकतांत्रिक संपादक थे। संपादकीय नीतियों को लेकर वरिष्ठ सहयोगियों को तो छोड़िये, टीम के कनिष्ठतम सदस्य की असहमति का सम्मान था। और कई बार ऐसे अवसर आये कि माथुर जी के खुद के लिखे को लेकर असहमतियां मुखर भी हुईं, लेकिन जहां तक मैं जानता हूं किसी के निजी करियर पर इन असहमतियों का कोई भी विपरीत असर नहीं पड़ा। वह भाषा के धनी क्या, बल्कि कुबेर थे, हममें से बहुतों ने उनकी भाषा से बहुत कुछ चुराया है, लेकिन 'नयी' को 'नई' लिखने के उनके तर्क से मैं तब भी सहमत नहीं था और अब भी नहीं हूं।

बहरहाल, आज के संपादकों को माथुर जी से सीखना चाहिए कि संपादक होना क्या होता है!

साभार-https://www.samachar4media.com/ से